IJAER/February-March 2020/Volume-9/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

जनजाति समाज में वनों का महत्व

(दक्षिणी राजस्थान के विशेष सन्दर्भ में)

कान्तिलाल निनामा
उपाचार्य
सर्वपल्ली डा.राधाकृष्णनन महाविद्यालय
बागीदौरा, जिला बांसवाड़ा

वनों के संरक्षण से जनजातियों की अर्थव्यवस्था को गति एवं संस्कृति को गरिमा प्रदान होती है। वस्तुतः वन जनजातियों के पोषक रहे है। जिनसे उन्हें विभिन्न प्रत्यक्ष लाभ जैसे–ईधन, मवेशियों के लिए चारा, मकान निर्माण के लिए लकड़ी, खाद, फल–फूल, सब्जियां, खाने योग्य कन्दमूल, विभिन्न प्रकार की लकड़ियां, जडी–बूटियां, अनेक वाणिज्य उपयोगी लघु वन उत्पादित वस्तुएं आदि प्राप्त हुए है। अप्रत्यक्ष लाभ–स्वच्छ और शीतल वायु, पक्षियों का कलरव, संतुलित तापमान, समय पर वर्षा, हरियाली, खुशबू आंधी और तूफान से रोक तथा बाढ़ आदि से बचाव भी होता रहा है। वनों के संरक्षण से ही जनजातियों के परम्परागत विश्वास, प्रथाएं, रिवाज, लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, लोकमान्यताएं, उनकी बोली तथा उनके जादू–टोने आदि की बाहरी दुनिया के हस्तक्षेप से रक्षा होती रही है। अतः वनों से न सिर्फ उन्हें मातृत्व तुल्य लाभ प्रदान हुआ है बल्कि उन्हें आश्रय, भोजन, रोजगार तथा सुदृढ़ संस्कृति भी प्रदान होती रही है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद एवं भारतीय वन नीति के अतिरिक्त आधुनिक भारत में जनसंख्या विस्फोट, सड़कें एवं संचार सुविधाओं, खनन–उत्खनन, नदी–घाटी परियोजनाओं के निर्माण एवं उनके प्रभावित परिवारों को बसाने के लिए वनों का दोहरा नुकसान हुआ है। परिणामस्वरूप आदिवासियों की आर्थिक क्रियाएं शुन्य हो गयी है एवं उनका शहरों की और पलायन बढ़ने लगा। जिससे उनके पारिवारिक जीवन में कलह स्वास्थ्य में गिरावट तथा उनके सामाजिक, धार्मिक और परम्परागत विश्वासों में शिथिलता आयी है। सरकार द्वारा लागू की गयी वनीकरण की विभिन्न योजनाएं जैसे– सामाजिक वानिकी, सुखा अधिनस्थ कार्यक्रम, पड़त भूमि विकास कार्यक्रम एवं अकाल राहत कार्यक्रमों के अन्तर्गत वृक्षारोपण की योजनाएं आदिवासियों की आशाओं के विरूद्ध रही है।

नदी घाटी योजनाओं कड़ाना और माही से प्रभावित जनजातियों को अपने पैतृक गांवों से न सिर्फ विमुख होना पड़ा है, अपितु एवज में उन्हें अनउपजाऊ एवं ऊँची सतहों की पथरीली भूमि आवंटित

की गई है। जहां उन्हें विभिन्न आर्थिक चुनौतियों का सामना करने के लिए मजबूर किया गया है तथा दूसरी और उनके पैतृक गांवो के प्रति लगाव, परम्पराओं एवं भावनाओं को आघात पहुंचाया है। जंगलों की वन सम्पदा से ही जनजाति समाज की संस्कृति पुष्पित एवं पल्लवित हुई है। सामान्यतः जनजातीय समुदाय जंगलों, पहाड़ों एवं सुन्दर वनों में रहने वाले ऐसे मानव समुदाय है जिसका औद्योगिक और नगरीय समुदायों से बहुत कम सम्पर्क रहा है तथा अपनी पृथकता के कारण विशेष सभ्यता और सामाजिक व्यवस्था से अधिक पहचाने गए है। वन सच्चे मायने में उनके पोषक रहे है, जहां से उन्हें प्रकृति द्वारा प्रदत्त हरी–भरी गोद एवं स्वच्छ वातावरण इत्यादि प्रदान हुआ है। वनों के संरक्षण में वे अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे है।

स्वयं आदिवासी लोग अपने आपको 'वनपुत्र' मानते है। वनों के संरक्षण में उन्हें शिकार, मांस, मवेशियों के लिए चारा, अपने मकानों के लिए काष्ठ व अन्य लकड़ियों की पूर्ति होती रही है। वनों को दैवीय शक्ति मानकर इनकी पूजा करते है। चूंकि इनकी आवश्यकताएं वनों पर ही निर्भर रही है तथा वनों के संरक्षण में ही इनका हित निहित है। एन.एन. व्यास के अनुसार सन् 1948 में राजस्थान के गठन के बाद जनजातियों को 1949–55 की समयावधि में वनों के उपयोग की अधिक सुविधाएं प्रदान की गयी जो क्रमशः इस प्रकार है –

1. प्रत्येक जनजाति परिवार को हर तीन साल में मकान–निर्माण के लिए 168 घन फीट काष्ठ और 15 घन फीट काष्ट कृषि उपकरणों हेतु दिया जायेगा।
2. ईधन मुफ्त दिया जायेगा।
3. वन क्षेत्र में मवेशियों को चरने दिया जायेगा।
4. घेराबन्दी के लिए मुफ्त झाड़ियां प्रदान करना।
5. घास एवं पत्तियों का चारा मुफ्त में प्रदान करना आदि रियायतें प्रदान की गयी।

वर्तमान में वन विभाग द्वारा आरक्षित एवं सुरक्षित वनों पर भी जनजातियों के अधिकार लुप्त हो गए है। वनों एवं उनकी रियायतों पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए तथा इनका उल्लंघन करने वालों को उचित दण्ड का प्रावधान रखा गया। परिणामस्वरूप राज्य के विभिन्न जनजातीय लोग वन उत्पादित वस्तुओं से वंचित हो गये है।

1961 में राज्य के 43382 वर्ग किलोमीटर पर वन थे। अर्थात् राज्य की 12.7 प्रतिशत भूमि पर ही वनों का आवरण था।

1961 में राज्य में निम्नांकित जिलों की वन स्थिति

क्र. सं.	जिले	वन आवरण (100 एकड़)	वर्ष	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	पूरे राज्य का भाग प्रतिशत में
1	बांसवाड़ा	441	1961	35.1	15.4
2	डूंगरपुर	185	1961	19.8	6.5
3	उदयपुर	366	1961	14.5	22.
4	चित्तौड़गढ़	226	1961	8.9	7.9
5	सिरोही	60	1961	4.7	2.1

प्रकृति और पुरूष का सम्बन्ध सनातन है। भोजन, कपड़ा और आवास की जरूरतों के लिए प्राकृतिक संपदा का दोहन होता रहा है। गत कुछ दशकों से वनों का राष्ट्रीयकरण एवं विभिन्न विकासशील योजनाओं जैसे–सड़कों के निर्माण से कड़ाणा और माही नदी घाटी परियोजनाओं के निर्माण से डूबे वन क्षेत्र एवं पुनवासित परिवारों को बसाने के लिए खनन–उत्खनन, विभिन्न कल कारखानों की स्थापना आदि से वनों का तीव्र गति से कटाव हुआ है।

वनों से लाभ

वनों से कई लाभ होते है। जैसे– जलवायु को कम व सम बनाना, वर्षा आकर्षित करना, बाढ़ व आंधियों के प्रकोप को कम करना, भूमि क्षरण को नियंत्रित रखना, वनस्पति अंश प्रदान करके मिट्टी में ह्यूमस तत्व के द्वारा उत्पादकता बढ़ाना, भूमिगत जल स्तर को बनाये रखना, वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करना, प्राकृति सौन्दर्य में वृद्धि करना, जैव विविधता बनाये रखना, जैविक संतुलन बनाये रखना, वन वर्षा के समय जल के प्रवाह को नियंत्रित करते है तथा मृदा अपरदन एवं बाढ़ की समस्याओं पर नियंत्रण रखने के लिए प्रभावी भूमिका निभाते है। ये वनस्पति एवं जीव जगत की अनेक प्रजातियों को संरक्षण प्रदान करते हैं।

वनों के विनाश से इन सभी लाभों से मानवता वंचित होती जा रही है। अत्यधिक आर्थिक महत्व होने से आधुनिक युग में वनों का अदूरदर्शितापूर्ण ढंग से दोहन किया जा रहा है। विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष 110 लाख हेक्टेयर भूमि के वन नष्ट किये जा रहे है। पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार प्रत्येक देश में उपलब्ध भूमि के लगभग 33 प्रतिशत भाग पर वन होना आवश्यक है। भारत में केवल 19 प्रतिशत भू–भाग पर ही वन पाये जाते है। राजस्थान में कुल क्षेत्रफल का 9.49 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित है। राजस्थान में कुल वन क्षेत्र 32,549. 64 वर्ग किमी है। जिसका 39.26 प्रतिशत आरक्षित वन, 52.62 प्रतिशत रक्षित वन और 8.48 प्रतिशत अवर्गीकृत वन है। राज्य में प्रति व्यक्ति 0.06 हैक्टेयर वन क्षेत्र ही है जो राष्ट्रीय स्तर पर 0.11 हैक्टेयर प्रति व्यक्ति से कम है।

वन अधिकार मान्यता कानून 2006

वनों से जुड़ी आजीविका एवं अधिकारों को लेकर अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों के अधिकार मान्य करने बाबत् केन्द्र सरकार ने वन अधिकार मान्यता कानून 16 दिसम्बर 2006 को संसद में पारित कर 31 दिसम्बर 2007 को लागू कर दिया है और 1 जनवरी 2008 को इसके नियम भी नोटिफाई हो कर लागू हो गए है। वन अधिकार मान्यता कानून से व्यक्तिगत सामुदायिक अधिकारों के साथ–साथ वन संरक्षण की जिम्मेदारी भी मान्य की गई है। इसके अलावा वन्य जीव कानून–आदिवासी स्वशासन कानून, भारतीय वन अधिनियम तथा पंचायती राज कानून की भूमिका भी इस कानून के क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण है।

वनों में रहने वाले अनुसूचित जनजातियों और अन्य परम्परागत वन निवासियों को जो पीढ़ियो से निवास कर रहे है उन्हें उनके पारम्परिक अधिकारों को कानून के अनुसार मान्यता दी गई है। वन अधिकारों और वन भूमि में अधिभोग को मान्यता देने, वनों का दीर्घकालीन उपयोग के लिए संरक्षण, जैव विविधता, पर्यावरण और पारिस्थितिकी के सन्तुलन को बनाए रखने तथा अनुसूचित जनजाति व अन्य परम्परागत वन निवासियों की आजीविका एवं खाद्य सुरक्षा बनाये रखने व वनों के संरक्षण की व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए भारत सरकार द्वारा वनाधिकार मान्यता अधिनियम लागु किया गया है, इस कानून से वन में रहने वाले आदिवासी एवं अन्य परम्परागत वन निवासियों को व्यक्तिगत एवं सामुदायिक अधिकार मिले है।

मानव अपने स्वार्थवश भौतिक उन्नति के उद्देश्यों से आदिकाल से विविध प्रयोग करता रहा है। मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव द्वारा भौतिक संसाधनों का प्रयोग जब तक केवल अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति तक संयमित रहा, तब तक पर्यावरण आर परिस्थितिकी संतुलन बना रहा। लेकिन आधुनिक काल में तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, संसाधन दोहन, और प्रकृति के प्रति बढ़ती उपेक्षा की भावना से पर्यावरण ह्रास की एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा हो गई है कि वन संरक्षण के बारे में सोचना आवश्यक हो गया है।

पारिस्थितिकीय सन्तुलन के लिए देश में प्रतिवर्ष ''वन महोत्सव'' व साथ ही 21 मार्च को ''विश्व वानिकी दिवस'' तथा अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में ''वन्य जीव सप्ताह'' के रूप में मनाया जाता है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि वन और वन्य प्राणियों का विनाश मानव के लिए दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का सूचक है क्योंकि वन्य जीवन के बिना वनों की कोई सार्थकता नहीं है और वनों के बिना हम जीव जगत का अस्तित्व नहीं हो सकता।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राम आहूजा (2000) ''भारतीय समाज'' रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृ.सं. 262–265
2. आर.एम. लोढ़ा (2005) '' पर्यावरण अध्ययन '' हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर पृ.सं. 32–35
3. कौशिक गौतम (1999) '' संसाधन भूगोल '' रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ प.सं. 157–159
4. नदीम हसनैन (2004) '' समकालीन भारतीय समाज'' भारत बुक सेन्टर लखनऊ पृ.सं. 200–204
5. एस.सी. जैन (2002) ''वानिकी विस्तार और प्रबन्ध '' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर पृ.सं. 140–142
6. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद (1992) ''डूंगरपुर राज्य का इतिहास'', वैदिक यंत्रालय, अजमेर (प्रथम संस्करण) पृ.सं. 168–171
7. जैन, श्रीचन्द (1974) ''वनवासी भील और उनकी संस्कृति'' रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर द्वितीय संस्करण, पृ.सं. 136–139

8. दोसी, डां. शम्भुलाल एवं व्यास डां. नरेन्द्र एन (1992) ''राजस्थान की अनुसूचित जनजातियां'' प्रथम संस्करण, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, पृ.सं. 93–96

9. पलात, रामचन्द्र (1987) ''राजस्थान की वनविहारी जनजातियां'', श्री नीलकमल पलात एण्ड ब्रदर्स, पाल झोंथरी भीण्डा, जिला–डूंगरपुर, पृ.सं. 38–42

10. दीप नारायण पाण्डेय (1998) '' साझा संसाधन प्रबंध'' हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर, पृ.सं. 17–21